श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

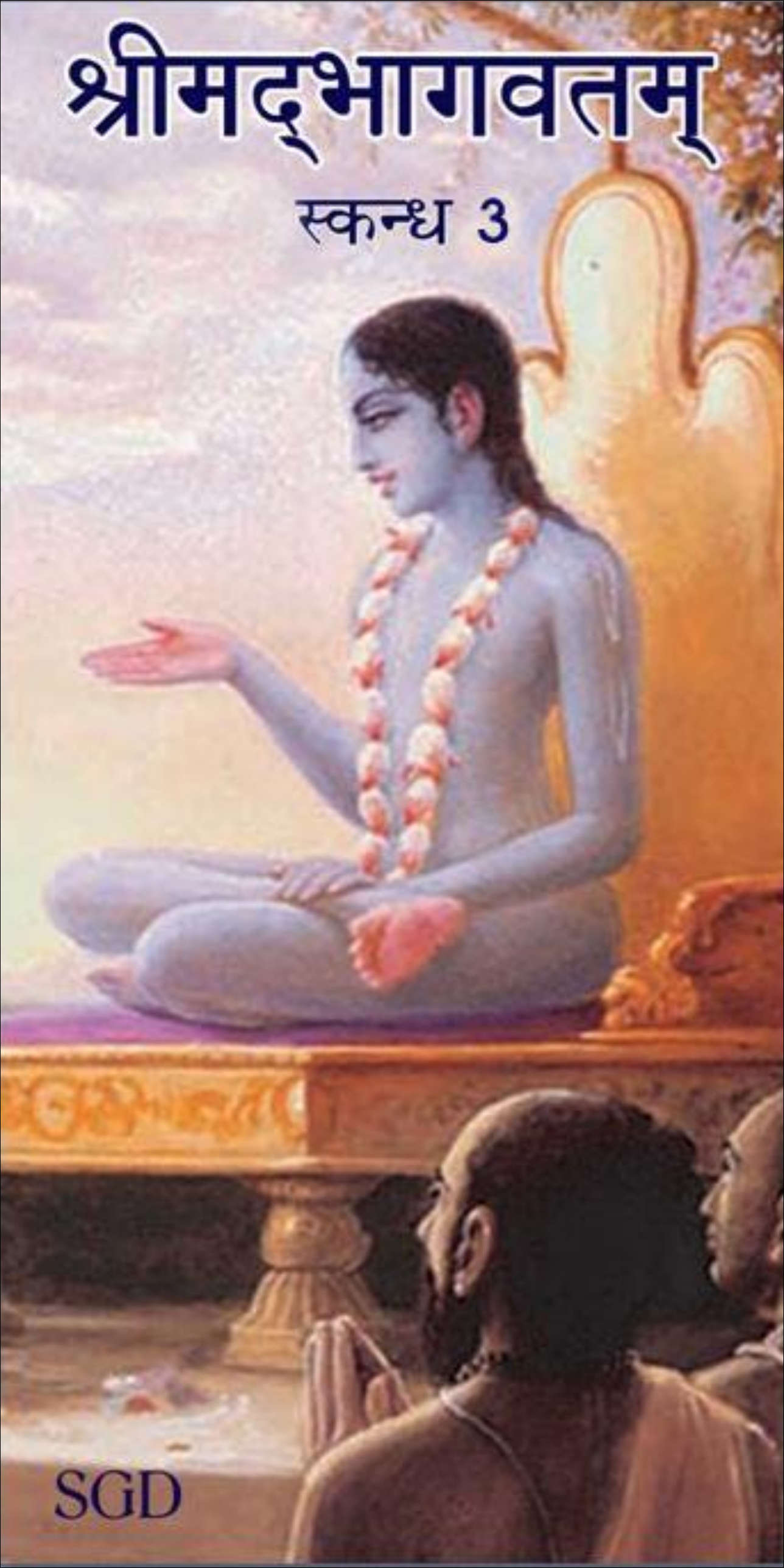

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 31

जीवों की गतियों के विषय में भगवान् कपिल के उपदेश

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: भगवान् ने कहा : परमेश्वर की अध्यक्षता में तथा अपने कर्मफल के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर धारण करने के लिए जीव (आत्मा) को पुरुष के वीर्यकण के रूप में स्त्री के गर्भ में प्रवेश करना होता है।

श्लोक 2: पहली रात में शुक्राणु तथा रज मिलते हैं और पाँचवी रात में यह मिश्रण बुलबले का रूप धारण कर लेता है। दसवीं रात्रि को यह बढ़कर

बेर जैसा हो जाता है और उसके बाद धीरे-धीरे यह मांस के पिण्ड या अंडे में परिवर्तित हो जाता है।

श्लोक 3: एक महीने के भीतर सिर बन जाता है और दो महीने के अन्त में हाथ, पाँव तथा अन्य अंग आकार पाते हैं। तीसरे मास के अन्त तक नाखून, अँगुलियाँ, अँगूठे, रोएँ, हड्डियाँ तथा चमड़ी प्रकट हो आती हैं और इसी तरह जननेन्द्रिय तथा आँखें, नथुने, कान, मुँह तथा गुदा जैसे छिद्र भी प्रकट होते हैं।

श्लोक 4: गर्भधारण के चार महीने के भीतर शरीर के सात मुख्य अवयव उत्पन्न हो जाते हैं। इनके नाम हैं—रस, रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा तथा वीर्य। पाँच महीने में भूख तथा प्यास लगने लगती है और छह मास के अन्त तक झिल्ली (जरायु) के भीतर बन्द गर्भ (भ्रूण) उदर के दाहिनी भाग में चलने लगता है।

श्लोक 5: माता द्वारा ग्रहण किये गये भोजन तथा जल से पोषण प्राप्त करके भ्रूण बढ़ता है और मल-मूत्र के घृणित स्थान में, जो सभी प्रकार के

कीटाणुओं के उपजने का स्थान है, रहा आता है।

श्लोक 6: उदर में भूखे कीड़ों द्वारा शरीर भर में बारम्बार काटे जाने पर शिशु को अपनी सुकुमारता के कारण अत्यधिक पीड़ा होती है। इस भयावह स्थिति के कारण वह क्षण क्षण अचेत होता रहता है।

श्लोक 7: माता के खाये कड़वे, तीखे, अत्यधिक नमकीन या खट्टे भोजन के कारण शिशु के शरीर में निरन्तर पीड़ा रहती है, जो प्राय: असह्य होती है।

श्लोक 8: झिल्ली से लिपटा और बाहर से आँतों द्वारा ढका (घिरा) हुआ शिशु उदर में एक ओर पड़ा रहता है। उसका सिर उसके पेट की ओर मुड़ा हुआ रहता है और उसकी कमर तथा गर्दन धनुषाकार में मुड़े रहते हैं।

श्लोक 9: इस तरह शिशु पिंजड़े के पक्षी के समान बिना हिले-डुले रह रहा होता है। उस समय, यदि शिशु भाग्यवान हुआ, तो उसे विगत सौ जन्मों के कष्ट स्मरण हो आते हैं और

वह दुख से आहें भरता है। भला ऐसी दशा में मन:शान्ति कैसे सम्भव है?

श्लोक 10: इस प्रकार गर्भाधान के पश्चात् सातवें मास से चेतना विकसित होने पर यह शिशु उन हवाओं के द्वारा चलायमान रहता है, जो भ्रूण को प्रसव के कुछ सप्ताह पूर्व से दबाती रहती हैं। वह उसी पेट की गन्दगी से उत्पन्न कीड़ों के समान एक स्थान में नहीं रह सकता।

श्लोक 11: इस भयभीत अवस्था में, भौतिक अवयवों के सात आवरणों से बँधा हुआ जीव हाथ

जोडक़र भगवान् से याचना करता है जिन्होंने उसे इस स्थिति में ला रखा है।

श्लोक 12: जीव कहता है : मैं उन भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ जो अपने विभिन्न नित्य स्वरूपों में प्रकट होते हैं और इस भूतल पर घूमते रहते हैं। मैं उन्हीं की शरण ग्रहण करता हूँ, क्योंकि वे ही मुझे निर्भय कर सकते हैं और उन्हीं से मुझे यह जीवन-अवस्था प्राप्त हुई है, जो मेरे अपवित्र कार्यों के सर्वथा अनुरूप है।

श्लोक 13: मैं विशुद्ध आत्मा अपने कर्म के द्वारा बँधा हुआ, माया की व्यवस्थावश इस समय अपनी माता के गर्भ में पड़ा हुआ हूँ। मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जो यहाँ मेरे साथ हैं, किन्तु जो अप्रभावित हैं और अपरिवर्तनशील हैं। वे असीम हैं, किन्तु संतप्त हृदय में देखे जाते हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

श्लोक 14: मैं अपने इस पंचभूतों से निर्मित भौतिक शरीर में होने के कारण परमेश्वर से विलग हो

गया हूँ, फलत: मेरे गुणों तथा इन्द्रियों का दुरुपयोग हो रहा है, यद्यपि मैं मूलत: आध्यात्मिक हूँ। चूँकि ऐसे भौतिक शरीर से रहित होने के कारण भगवान् प्रकृति तथा जीव से परे हैं और चूँकि उनके आध्यात्मिक गुण महिमामय हैं, अत: मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

श्लोक 15: जीव आगे प्रार्थना करता है : जीवात्मा प्रकृति के वशीभूत रहता है और जन्म तथा मरण का चक्र बनाये रखने के लिए कठिन श्रम करता रहता है। यह बद्ध

जीवन भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध की विस्मृति के कारण है। अत: बिना भगवान् की कृपा के कोई भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति में पुन: किस प्रकार संलग्न हो सकता है?

श्लोक 16: भगवान् के आंशिक स्वरूप अन्तर्यामी परमात्मा के अतिरिक्त और कौन समस्त चर तथा अचर वस्तुओं का निर्देशन कर रहा है? वे काल की इन तीनों अवस्थाओं भूत, वर्तमान तथा भविष्य में उपस्थित रहते हैं। अत: बद्धजीव उनके ही आदेश से विभिन्न कर्मों में

रत है और इस बद्ध जीवन के तीनों तापों से मुक्त होने के लिए हमें उनकी ही शरण ग्रहण करनी होगी।

श्लोक 17: अपनी माता के उदर में रक्त, मल तथा मूत्र के कूप में गिर कर और अपनी माँ की जठराग्नि से दग्ध देहधारी जीव बाहर निकलने की व्यग्रता में महीनों की गिनती करता रहता है और प्रार्थना करता है, "हे भगवान्, यह अभागा जीव कब इस कारागार से मुक्त हो पाएगा?"

श्लोक 18: हे भगवान्, आपकी अहैतुकी कृपा से मुझमें चेतना आई,

यद्यपि मैं अभी केवल दस मास का हूँ। पतितात्माओं के मित्र भगवान् की इस अहैतुकी कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट करने के हेतु मेरे पास हाथ जोड़कर प्रार्थना करने के अतिरिक्त है ही क्या?

श्लोक 19: अन्य प्रकार का शरीरधारी जीव केवल अन्त:प्रेरणा से देखता है, वह उस शरीर के ग्राह्य तथा अग्राह्य अनुभवों से ही परिचित होता है, किन्तु मुझे ऐसा शरीर प्राप्त है, जिसमें मैं अपनी इन्द्रियों को वश में रखता हूँ और अपने गन्तव्य को समझता हूँ, अत: मैं उन भगवान् को

सादर नमस्कार करता हूँ जिनके आशीर्वाद से मुझे यह शरीर प्राप्त हुआ है और जिनकी कृपा से मैं उन्हें भीतर और बाहर देख सकता हूँ।

श्लोक 20: अत: हे प्रभु, यद्यपि मैं अत्यन्त भयावह परिस्थिति में रह रहा हूँ, किन्तु मैं अपनी माँ के गर्भ से बाहर आकर भौतिक जीवन के अन्धकूप में गिरना नहीं चाहता। देवमाया नामक आपकी बहिरंगा शक्ति तुरन्त नवजात शिशु को पकड़ लेती है और उसके बाद तुरन्त ही झूठा स्वरूपज्ञान प्रारम्भ हो जाता है, जो

निरन्तर जन्म तथा मृत्यु के चक्र का शुभारम्भ है।

श्लोक 21: अत: और अधिक क्षुब्ध न होकर मैं अपने मित्र विशुद्ध चेतना की सहायता से अज्ञान के अन्धकार से अपना उद्धार करूँगा। केवल भगवान् विष्णु के चरणकमलों को अपने मन में धारण करके मैं बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के लिए अनेक माताओं के गर्भों में प्रविष्ट करने से बच सकूँगा।

श्लोक 22: भगवान् कपिल ने कहा : अभी तक गर्भ में स्थित इस

दस मास के जीव की भी ऐसी कामनाएँ होती हैं। किन्तु जब वह भगवान् की स्तुति करता रहता है तभी प्रसूति काल की वायु औंधे मुँह पड़े हुए उस शिशु को बाहर की ओर धकेलती है, जिससे वह जन्म ले सके।

श्लोक 23: वायु द्वारा सहसा नीचे की ओर धकेला जाकर अत्यन्त कठिनाई से, सिर के बल, श्वासरहित तथा तीव्र वेदना के कारण स्मृति से विहीन होकर शिशु बाहर आता है।

श्लोक 24: इस प्रकार वह शिशु मल तथा रक्त से सना हुआ पृथ्वी पर

आ गिरता है और मल से उत्पन्न कीड़े के समान छटपटाता है। उसका श्रेष्ठ ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह माया के मोहजाल में विलखता है।

श्लोक 25: उदर से निकलने के बाद शिशु ऐसे लोगों की देख-रेख में आ जाता है और उसका पालन ऐसे लोगों द्वारा होता रहता है, जो यह नहीं समझ पाते कि वह चाहता क्या है। उसे जो कुछ मिलता है उसे वह इनकार न कर सकने के कारण वह अवांछित परिस्थिति में आ पड़ता है।

श्लोक 26: पसीने तथा कीड़ों से भरे हुए मैले-कुचैले बिस्तर पर लिटाया हुआ शिशु खुजलाहट से मुक्ति पाने के लिए अपना शरीर खुजला भी नहीं पाता; बैठने, खड़े होने या चलने की बात तो दूर रही।

श्लोक 27: इस असहाय अवस्था में मुलायम त्वचा वाले बालक को डाँस, मच्छर, खटमल तथा अन्य कीड़े काटते रहते हैं, जिस तरह बड़े कीड़े को छोटे-छोटे कीड़े काटते रहते हैं। बालक अपना सारा

ज्ञान गँवा कर जोर-जोर से चिल्लाता है।

श्लोक 28: इस प्रकार विविध प्रकार के कष्ट भोगता हुआ शिशु अपना बाल्यकाल बिता कर किशोरवस्था प्राप्त करता है। किशोरावस्था में भी वह अप्राप्य वस्तुओं की इच्छा करता है, किन्तु उनके न प्राप्त होने पर उसे पीड़ा होती है। इस प्रकार अज्ञान के कारण वह क्रुद्ध तथा दुखित होता है।

श्लोक 29: शरीर बढ़ने के साथ ही जीव अपने आत्मा को परास्त

करने के लिए अपनी झुठी प्रतिष्ठा को तथा क्रोध को बढ़ाता है और इस तरह अपने ही जैसे कामी पुरुषों के साथ वैर उत्पन्न करता है।

श्लोक 30: ऐसे अज्ञान से जीव पंचतत्त्वों से निर्मित भौतिक शरीर को 'स्व' मान लेता है। इस भ्रम के कारण वह क्षणिक वस्तुओं को निजी समझता है और अन्धकारमय क्षेत्र में अपना अज्ञान बढ़ाता है।

श्लोक 31: जो शरीर जीव के लिए निरन्तर कष्ट का साधन है और जो अज्ञान तथा कर्म के बन्धन से बँधे

जीव का अनुगमन करता है, उस शरीर के लिए जीव अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं जिससे वह जन्म-मृत्यु के चक्र के अधीन हो जाता है।

श्लोक 32: अत: यदि जीव विषय-भोग में लगे हुए ऐसे कामी पुरुषों से प्रभावित होकर, जो स्त्रीसंग-सुख व स्वाद की तुष्टि में ही रत हैं, असत् मार्ग का अनुसरण करता है, तो वह पहले की तरह पुन: नरक को जाता है।

श्लोक 33: वह सत्य, शौच, दया, गम्भीरता, आध्यात्मिक बुद्धि,

लज्जा, संयम, यश, क्षमा, मन-निग्रह, इन्द्रिय-निग्रह, सौभाग्य और ऐसे ही अन्य सुअवसरों से विहीन हो जाता है।

श्लोक 34: मनुष्य को चाहिए कि ऐसे अभद्र (अशान्त) मूर्ख की संगति न करे जो आत्म- साक्षात्कार के ज्ञान से रहित हो और स्त्री के हाथों का नाचने वाला कुत्ता बन कर रह गया हो।

श्लोक 35: अन्य किसी वस्तु के प्रति आसक्ति से उत्पन्न मुग्धता तथा बन्धन उतने पूर्ण नहीं होते जितने कि

किसी स्त्री के प्रति आसक्ति से या उन व्यक्तियों के साथ से जो स्त्रियों के कामी रहते हैं।

श्लोक 36: ब्रह्मा अपनी पुत्री को देखकर उसके रूप पर मोहित हो गये और जब उसने मृगी का रूप धारण कर लिया तो वे मृग रूप में निर्लज्जतापूर्वक उसका पीछा करने लगे।

श्लोक 37: ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न समस्त जीवों—अर्थात् मनुष्य, देवता तथा पशु में से ऋषि नारायण के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा नहीं है, जो

स्त्री रूपी माया के आकर्षण के प्रति निश्चेष्ट हो।

श्लोक 38: तनिक स्त्री रूपी मेरी माया की अपार शक्ति को समझने का प्रयत्न तो करो, जो मात्र अपनी भौहों की गति से संसार के बड़े से बड़े विजेताओं को भी अपनी मुट्ठी में रखती है।

श्लोक 39: जो योग की पराकाष्ठा को प्राप्त करना चाहता हो तथा जिसने मेरी सेवा करके आत्म-साक्षात्कार कर लिया हो उसे चाहिए कि वह कभी किसी आकर्षक स्त्री की

संगति न करे, क्योंकि शास्त्रों में घोषणा की गई है कि प्रगतिशील के लिए ऐसी स्त्री नरक के द्वार तुल्य है।

श्लोक 40: भगवान् द्वारा उत्पन्न स्त्री माया स्वरूपा है और जो ऐसी माया की सेवाएँ स्वीकार करके उसकी संगति करता है उसे यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि यह घास से ढके हुए अंधे कुएँ के समान उसकी मृत्यु का मार्ग है।

श्लोक 41: पूर्व जीवन में स्त्री-आसक्ति के कारण जीव स्त्री का रूप प्राप्त करता है मूर्खतावश माया को

अपना पति मानकर उसे ही सम्पत्ति, सन्तान, घर तथा अन्य भौतिक साज समान देने वाला समझता है।

श्लोक 42: अतएव स्त्री को अपने पति, घरबार और अपने बच्चों को उसकी मृत्यु के लिए भगवान् की बहिरंगा शक्ति की व्यवस्था के रूप में मानना चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे शिकारी की मधुर तान हिरन के लिए मृत्यु होती है।

श्लोक 43: विशेष प्रकार का शरीर होने के कारण भौतिकतावादी जीव अपने कर्मों के अनुसार एक

लोक से दूसरे लोक में भटकता रहता है। इसी प्रकार वह अपने आपको सकाम कर्मों में लगा लेता है और निरन्तर फल का भोग करता है।

श्लोक 44: इस प्रकार सकाम कर्मों के अनुसार जीवात्मा को मन तथा इन्द्रियों से युक्त उपयुक्त शरीर प्राप्त होता है। जब किसी कर्म का फल चुक जाता है, तो इस अन्त को मृत्यु कहते हैं और जब कोई फल प्रारम्भ होता है, तो उस शुभारम्भ को जन्म कहते हैं।

श्लोक 45-46: जब दृष्टि-तंत्रिका के प्रभावित होने से आँखें रंग या रूप को देखने की शक्ति खो देती हैं, तो चक्षु-इन्द्रिय मृतप्राय हो जाती है। तब आँख तथा दृष्टि का द्रष्टा जीव अपनी देखने की शक्ति खो देता है। इसी प्रकार जब भौतिक शरीर, जो वस्तुओं की अनुभूति का स्थल है, अनुभव करना बन्द कर देता है, तो इस अयोग्यता को मृत्यु कहते हैं। जब मनुष्य शरीर को स्व मानने लगता है, तो इसे जन्म कहते हैं।

श्लोक 47: अत: मनुष्य को न तो मृत्यु को भयभीत होकर देखना चाहिए, न शरीर को आत्मा मानना चाहिए, न ही जीवन की आवश्यकताओं के शारीरिक भोग को बढ़ा-चढ़ा कर समझना चाहिए। जीव की असली प्रकृति को समझते हुए मनुष्य को आसक्ति से रहित तथा उद्देश्य में दृढ़ होकर संसार में विचरण करना चाहिए।

श्लोक 48: सही-सही दृष्टि से युक्त तथा भक्ति से पुष्ट होकर एवं भौतिक पहचान के प्रति निराशावादी

दृष्टिकोण से समन्वित होकर मनुष्य को तर्क द्वारा अपना शरीर इस मायामय संसार को गिरवी कर देनी चाहिए। इस तरह वह इस जगत से अपना सम्बन्ध छुड़ा सकता है।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव